डा. महेंद्र भटनागर-विरचित अद्यतन काव्य-कृति

‘राग-संवेदन’

रागात्मकता और निस्संगता-बोध की कविताएँ

.— डा. ऋषिकुमार चतुर्वेदी

.

‘राग-संवेदन’ महेंद्र भटनागर की नवीनतम काव्य-कृति है। पूर्ववर्ती काव्य-कृति ‘मृत्यु-बोध: जीवन-बोध’ की तरह हिन्दी-कविताओं का अंग्रेज़ी-अनुवाद उनके साथ-साथ दिया गया है। प्रस्तुत कृति में यह अनुवाद हिंदी-प्रोफ़ेसर डा. आदेश्वर राव द्वारा किया गया है। ज़ाहिर है, अंग्रेज़ी-अनुवाद उनके लिए है जो हिन्दी नहीं जानते या हिन्दी-कविताओं को अधिक स्पष्टता से नहीं समझ पाते। इस दृष्टि से अनुवाद सफल हुआ है। अनुवादक ने मूल रचनाओं में डूबकर मानो एक मौलिक सृष्टि ही कर दी है।

.

यद्यपि प्रस्तुत कृति में समाजार्थिक संदर्भों की कविताएँ भी हैं; किन्तु प्रमुखता उन कविताओं की है जिनमें कवि अपने भीतर गहराई में उतरा है। पहली कविता ‘राग-संवेदन’ में वह आत्मीयता, रागात्मकता तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच पनपने वाले प्रीति-संबंधों के महत्त्व को रेखांकित करता है। दूसरी कविता ‘ममत्व’ में भी वह अनूठे प्यार के आँसुओं को जीवन की अमूल्य और दुर्लभ निधि बताते हुए यह संकेत करता है कि यही एक वस्तु है जिससे मनुष्य में सात्विक भावों का उद्रेक होता है और वह अपना आत्म-विस्तार कर सकता है। वास्तव में, यह शाश्वत सत्य है; जिसे सहृदय कवि सदा से अनुभव करते रहे हैं। प्रसाद की ऋद्धा ने भी मनु से यही कहा था — ‘तपस्वी, आकर्षण से शून्य कर सके नहीं आत्म-विस्तार!’ हमारे भीतर की यह नैसर्गिक रागात्मकता ‘चाहे जाने की’ अपेक्षा उत्पन्न करती है:

.

कोई तो हमें चाहे / गाहे-ब-गाहे!
निपट सूनी अकेली ज़िन्दगी में,
गहरे कूप में बरबस ढकेली ज़िन्दगी में,
निष्ठुर घात-वार-प्रहार झेली ज़िन्दगी में
कोई तो हमें चाहे / सराहे!

.

आदमी-आदमी के बीच रिश्तों की गरमाहट चाहे व्यक्ति और समाज के लिए कितनी भी ज़रूरी हो, प्यार-भरे आँसू जितने भी पवित्र हों; किसी का प्यार पाने की अपेक्षाएँ चाहे कितनी भी बेचैन कर डालने वाली हों; किन्तु जीवन का यथार्थ कुछ और ही है। प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति यह अनुभव करता है कि भीड़-भरी इस दुनिया में वह अकेला है। चारों ओर से उठते शोर-शराबे के बीच उसकी आवाज़ सुनने की किसी को फ़ुरसत नहीं है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्ध कविता ‘एकला चलो रे’ और ‘निराला’ की ‘मैं

अकेला' जैसी कविताओं में अकेलेपन के इसी दंश की अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत कृति की कविता 'चिर-वंचित' में भी इसी भाव की सृष्टि हुई है:

.

जीवन-भर रहा अकेला,
अनदेखा —
सतत उपेक्षित / घोर तिरस्कृत!
जीवन-भर अपने बलबूते
झंझावातों का रेला झेला!

.

यथार्थ के धरातल पर आकर कवि यह भी अनुभव करता है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच संबंध भी स्थायी नहीं रहते। भावाकुल क्षणों में चाहे हम जन्म-जन्मान्तर बँधे रहने की बात कहें; किन्तु समय का प्रवाह उन बंधनों को जर्जर बना देता है:

.

अर्थहीन हो जाता है सहसा
चिर-संबंधों का विश्वास,
नहीं, जन्म-जन्मान्तरों का विश्वास!
अरे, क्षण-भर में मिट जाता है
वर्षों-वर्षों का होता घनीभूत
अपनेपन का अहसास!

.

किन्तु इन विषमताओं से कवि कुंठित नहीं होता। वह इस कटु यथार्थ का यथार्थ के धरातल पर समाधान करता है:

.

सकते में क्यों हो?
अरे, नहीं आ सकते
जब काम किसी के तुम
कोई क्यों आये पास तुम्हारे?

.

इस यथार्थ-बोध से मन में विकृतियाँ न उत्पन्न हों, इस बात से भी कवि सावधान है। कुंठा के मार्गान्तरीकरण का एक उपाय उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति है:

.

अच्छा हो
सूने कमरे की दीवारों पर शब्दांकित कर दो,
नाना रंगो से चित्रांकित कर दो

अपना मन!

.

कुंठा से मुक्ति का एक दूसरा रास्ता स्थितप्रज्ञता में से होकर निकलता है। कवि जानता है:
लोग हैं —

.

ऐसी हताशा में
व्यग्र हो कर बैठते हैं आत्महत्या
या खो बेठते हैं संतुलन
तन का / मन का!

.

इसीलिए वह स्वयं को प्रबोध देता हुआ कहता है:

.

किन्तु तुम हो
स्थिर / स्व-सीमित / मौन / जीवित / संतुलित
अभी तक!
वस्तुतः, जिसने जी लिया संन्यास
मरना और जीना
एक है उसके लिए!

.

'पूर्वाभास' कविता में भी रागद्वेष से मुक्ति का अहसास दिखायी देता है:

.

बहुत पीछे छोड़ आये हैं
प्रेम-संबंधों / शत्रुताओं के
अधजले शव!
खामोश है
बरसों-बरसों से
तड़पता / चीखता / दम तोड़ता रव!

.

कवि अपने चिन्तन की परिपक्वता में अन्य अनेक दार्शनिक निष्कर्षों पर भी पहुँचता है। उसने यह जाना है कि किसी बात या तत्व के निर्णय के लिए उचित मात्रा में ऊहापोह, मीमांसा, समीक्षा, तर्क, विशद विवेचना आवश्यक है। जीवन में जो कुछ घट चुका, वह घट चुका, उसे 'अघटित' हुआ नहीं किया जा सकता; जो ग़लतियाँ हो चुकीं, वे हो चुकीं, उन्हें सुधारा नहीं जा सकता। यह सत्य है कि तुम कर्ता हो, निर्णायक भी तुम्हीं हो; किन्तु नियामक तो कोई और ही है। इसलिए परिणाम या फल से निर्लिप्त होकर जीवन की कठिन परीक्षा में प्रविष्ट हो, जो सामने है, उसे स्वीकार करो। जीवन कोई योजनाबद्व ढंग से

लिखी हुई पुस्तक नहीं है। कब क्या घटित हो जाय, कब क्या बन जाय और कब क्या बिगड़ जाय, कोई नहीं जानता।

.

इस तत्त्वज्ञान ने कवि के दृष्टा रूप का विकास किया है। वह अपने दुःख-दर्द को भी निस्संग भाव से देखता है:

.

दर्द समेटे बैठा हूँ!
दलदल-दलदल पाँव धँसे हैं,
गर्दन पर, टखनों पर नाग कसे हैं!
शैया पर आग बिछाये बैठा हूँ!
धायँ-धायँ दहकाये बैठा हूँ!

.

इसी निस्संगता के कारण पीड़ादायक स्थितियाँ उसे तोड़ती नहीं, अपितु और 'जीवन्त' बनाती हैं। वह अपने विगत जीवन को भी इसी तटस्थ्ता के साथ देखता है — उसने जीवन-भर अजीबोग़रीब मूर्खताएँ की हैं, ग़लतियाँ की हैं, ख़ूब ग़लतियाँ की हैं, वह चूका है, बार-बार चूका है। वह जिया है; लेकिन जीने का ढंग उसे नहीं आया; क्योंकि ढोंग करना उसने सीखा नहीं। उसने लोगों पर विश्वास किया, अपनों पर अंधविश्वास किया, और बार-बार वह छला गया — 'धूर्त साफ़ कर गये सब घर-बार!' धूर्तों का यह प्रपंच उसके निजी जीवन में भी घटित नहीं हुआ है, समाज में भी हर कहीं व्याप्त है:

.

धूर्त —
सरल दुर्बल को
ठगने / धोखा देने
बैठे हैं तैयार!
धूर्त —
लगाये घात, छिपे इर्द-गिर्द
करने गहरे वार!

.

ये 'अपहर्ता' धन-दौलत हड़पने, पुरखों की विरासत हथियाने में माहिर हैं। यह कैसी हवा चली है कि हर कोई अपना हित सोचता है। स्वार्थपरता की इस संक्रामक बीमारी का क्या कोई इलाज नहीं है? किन्तु जीवन में व्याप्त इन क्षुद्रताओं ने, कड़वे अनुभवों ने कवि को परिपक्व ही बनाया है:

.

ज़माने ने सताया जब बेइंतहा
काव्य में पीड़ा तभी तो
गा सका,

मर्माहत हुआ अपने परायों से जब
तभी तो मर्म जीवन का / जगत का
पा सका!

.

इसी तत्त्व दृष्टि ने कवि को खेल-भावना से जीना सिखाया है। 'खिलाड़ी' कविता में हम देखते हैं कि जीवन कवि के लिए एक अविश्रांत दौड़ है। इस दौड़ में वह निपट अकेला, बिना किसी से होड़ किये निरन्तर गतिमान है। क्योंकि गति ही जीवन है। जीवन का तालाब यद्यपि ओलंपिक का ठंडा तालाब नहीं है; फिर भी इसके खौलते पानी में हाथ-पैरों के जकड़ जाने, थक जाने तक अविरत तैरते जाना है। एक-के-बाद-एक भारी, और अधिक भारी बोझ ढोते जाना है। इसी श्रमशीलता ने मनुष्य को अमरत्व प्रदान किया है और इसी में मुक्ति का रहस्य छिपा है। यह आदमी की ही 'सिफ़त' है कि वह हर मुसीबत झेल लेता है और विपरीत विकट धारों से निडर बनकर खेलता है। कभी अपने बुद्धि-बल से और कभी बाहु-बल से प्रत्येक अवरोध को ठेलता हुआ निरन्तर गतिशील रहता है। यह उसकी उत्कट जिजीविषा है, जो सतत प्रेरणा देती रहती है। इसीलिए कवि दहकते लाल सूरज से प्रार्थना करता है कि वह उसके हृदय में ज़िन्दगी की आग भर दे; जिससे उसका थका निष्क्रिय तन निरन्तर गतिमान रहे। ज़िन्दगी की यही आग है जो उसे विफलताओं में भी विकल और निराश नहीं होने देती और लक्ष्य-प्राप्ति की ओर उन्मुख करती रहती है। इसी के बल पर कवि जीवन-संघर्ष में हारे हुए लोगों को उत्साहित करता है:

.

जीवन के कठिन संघर्ष में हारो हुओ!
हर क़दम दुर्भाग्य के मारो हुओ!
असहाय बन रोओ नहीं,
गहरा अँधेरा है
चेतना खोओ नहीं!
× × × × ×
पराजय को
विजय की सूचिका समझो,
अँधेरे को
सूरज के उदय की भूमिका समझो!
विश्वास का यह बाँध / फूटे नहीं,
भावना की डोर यह / छूटे नहीं!

.

वास्तव में विश्वास और भावना का संबल ही है जो मानव को मानव बनाये रखता है। अपने अकेलेपन से टूटा और थका-हारा व्यक्ति जब विश्वास और भावना के आलोक में इस जीवन-जगत् को देखता है तो पाता है:

.

अब कहाँ अकेला हूँ?
कितना विस्तृत हो गया अचानक
परिवार आज मेरा यह!
जाते-जाते
कैसे बरस पड़ा झर-झर
विशुद्ध प्यार घनेरा यह!

.

विश्व के 'श्रेयस' के लिए यह 'प्रेयस' — यह स्नेह-प्यार की भावना — संजीवनी औषध की तरह है:

.

सृष्टि में वरेण्य एक-मात्र
स्नेह-प्यार भावना!
मनुष्य की मनुष्य लोक मध्य
सर्व जन-समष्टि मध्य
राग-प्रीति भावना!
समस्त जीव-जन्तु मध्य
अशेष हो / मनुष्य की दयालुता
यही / महान् श्रेष्ठतम उपासना!

.

'वसुधैव कुटुम्कम्' की इस भावना के बीच मनुष्य की क्षुद्रताएँ सदा से आड़े आती रही हैं। इसी के चलते समता एक स्वप्न बनकर रह गयी है:

.

विश्व का इतिहास साक्षी है —
अभावों की धधकती आग में
जीवन हवन जिनने किया,
अन्याय से लड़ते / व्यवस्था को बदलते
पीढ़ियों / यौवन दहन जिनने किया,
वे ही छले जाते रहे प्रत्येक युग में,
क्रूर शोषण-चक्र में
अविरत दले जाते रहे प्रत्येक युग में!
× × × × ×
लेकिन
परस्पर साम्यवाही भावना इंसान की

निष्क्रिय नहीं होगी / न मानेगी पराभव!

.

मनुष्य-मनुष्य के बीच समता और प्रेम की स्थापना के मार्ग में दो बड़ी रुकावटें हैं — धर्मांधता और जातिवाद। हज़ारों साल से युग-दृष्टा कवि और संत-महात्मा इन अवरोधों से टक्कर लेते रहे हैं। किन्तु ये आज भी ज्यों-की-त्यों क़ायम है। हमारे आलोच्य कवि ने भी इन दोषों को लक्षित किया है। उसे यह बड़ा अद्भुत लगता है कि आदमी अपने से पृथक धर्म वाले आदमी को ग़ैर मानता है और उससे वैर ठानता है:

.

आदमी-आदमी के बीच पनपता
यदि प्रेमबंध गहरा भाई-चारा चाहिए
तो / विवेक-शून्य अंधविश्वासों की कंदराओं में
अटके-भटके आदमी को इंसान नया बनना होगा!
तमाम खोखले अप्रासंगिक
मज़हबी उसूलों को — आडम्बरों को त्याग कर
वैज्ञानिक विचार-भूमि पर
नयी उन्नत मानव-संस्कृति को गढ़ना होगा!

.

इसी प्रकार 'जातिवाद' की विडम्बना को कवि ने 'स्वप्न' शीर्षक कविता में एक फ़ेण्टेसी के माध्यम से उकेरा है और अंत में यह शाश्वत प्रश्न हमारे सामने रखा है:

.

'जात न पूछो साधु की!'
हे कबीर! क्या काई मानेगा बात तुम्हारी?
'शिक्षित' समाज में, 'सभ्य-सुसंस्कृत' समाज में
आदमी — सुरक्षित है कितना?
आदमी — अरक्षित हैं कितना?
हे सर्वज्ञ इलाही,
दे, सत्य गवाही!

.

हमारे देश का वर्तमान राजनीतिक प्रदूषण भी वास्तविक समृद्धि और प्रगति में एक बड़ी बाधा है। इस देश के आदमी की ख़ुदगरज़ी देखकर कवि 'हैरान' है, जो चंद सिक्कों के लिए 'शैतान' को मतदान कर आता है, मंत्रियों को रिझाने के लिए उनके सामने कठपुतली की तरह नाचता है। ऐसा यह आदमी अपनी पहचान ही खो बैठा है और अजनबी-सा दिखायी देता है। इस देश के मंत्राी और नेता, विशेष वायुयान से, 'शताब्दी-एक्सप्रेस' से, 'ए-सी एम्बेसेडर' से सफ़र करते हैं और भेड़-बकरियों की तरह जनता उनके

स्वागत में उमड़ पड़ती है। वर्षा होती है, बाढ़ आती है और ग़रीब 'देवा' पर क़हर टूट पड़ता है। उसका घरौंदा ढह जाता है, ईंधन गीला है, आटा-दाल बह गया है, चूल्हा नहीं जलेगा। 'देवा' भूखा रहने के लिए अभिशप्त है। उधर:

.

घन-घन करते नभ में वायुयान
मँडराते गिद्धों जैसे
शायद, नेता-मंत्री आये
करने चेहलकदमी!

.

हमारा समाज स्पष्ट दो ध्रुवों में विभाजित हो गया है:

.

हैं एक ओर भ्रष्ट राजनीतिक दल
उनके अनुयायी खल
सुख-सुविधा साधन-सम्पन्न / प्रसन्न!
दूसरी तरफ़:
जन हैं
भूखे-प्यासे दुर्बल अभावग्रस्त त्रस्त
शोषित वंचित शंकित!

.

कवि इस स्थिति में परिवर्तन का आह्वान करता है:

.

सड़ती लाशों की दुर्गन्ध लिए
ज़हरीली गैसों से / अलकोहल से लदी-लदी
गाँवों-नगरों के नभ-मंडल पर
जो हवा चली
उससे सँभलो, उसका रुख़ बदलो!

.

निस्संदेह, देश स्वतंत्रा हुआ है और कवि इससे उल्लसित होकर गा उठता है:

.

अब तो
धरती अपनी / अपना आकाश है!
स्वाधीन रहेंगे सदा-सदा
पूरा विश्वास है!
मानव-विकास का चक्र न पीछे मुड़ता

साक्षी इतिहास है!

.

इसी आशा के बल पर कवि युगान्तर की कल्पना करता है और 'परिवर्तन' को महसूस करता है। उपर्युक्त कविताओं में वर्णित विषमताओं के बावज़ूद उसे लगता है कि समता का बीज-मंत्र छतनार वृक्ष के रूप में लहरा रहा है। शोषित-पीड़ित जन जाग गया है, साम्य-भाव के नारों से नभ-मंडल दहल रहा है। यही विश्वास है जो कवि को विषमता की गहरी होती खाइयों और सडाँध भरी ज़हरीली हवाओं के बीच भी कुंठित और हताश नहीं होने देता।

.

हम प्रस्तुत आलेख के आरम्भ से ही देखते आ रहे हैं कि यह कवि के हृदय में गहन रागात्मकता ही है जो उसे विपरीत स्थितियों में भी सम्बल प्रदान करती है और हताशा तथा कुंठा से बचाती है। हमने यह भी देखा कि इस रागात्मकता में एक निस्संगता भी है, जिसे कवि ने अपने चिन्तन के बल पर विकसित किया है। इस प्रकार शरद् कालीन निर्मल जल के समान थिराई हुई यह रागात्मकता इन कविताओं में सर्वत्र विद्यमान है। इसी रागात्मकता में से कहीं प्रकृति के विविध रूपों के प्रति सहज उल्लास बह निकलता है और कहीं प्यार की विगत स्मृतियाँ उदित होती दिखायी देती हैं। वर्षा ऋतु में छाये बादलों को देखकर कवि आह्लादित हो उठता है:

.

वर्षा आयी, वर्षा आयी!
दुलहिन झूमी / घर-घर घूमी
मनहर स्वर में कजली गायी!
बदली छायी / वर्षा आयी!

.

भोर होते द्वार वातायन झरोखों से उचकती झाँकती उड़तीं, मधुर चहकार करती चिड़ियाँ, रात होते निकट के पोखरों से उठने वाला झींगुरों-दादुरों का स्वर, दिन को रंग-बिरंगे चित्रों से रँगा आकाश, रात को नभ-पर्यंक पर सोती ज्योत्स्ना देख कर कवि अनुभव करता है कि धरा कितनी मनोहर है और इस सृष्टि में कितना प्यार भरा है। इन दोनों कविताओं में प्रकृति पर कहीं-कहीं नारी रूप का आरोप भी किया गया है। अन्य दो कविताओं — 'मंत्र-मुग्ध' और 'हवा' में नारी रूप का आरोप न होकर अध्यवसान दिखायी देता है। 'मंत्र-मुग्ध' में चमेली के सौन्दर्य में और 'हवा' में हवा के शीतल स्पर्श में किसी सुन्दरी नायिका के सुन्दर सान्निध्य की व्यंजना भी होती है। प्रकृति और नारी के रूप कवियों को सदा से आकर्षित करते रहे हैं और इन दोनों के परस्पर संश्लेषण से अनेकानेक मनोहारी कविताओं की सृष्टि हुई है। प्रस्तुत कविताएँ उसी परम्परा में है।

. बहुत दिनों के बाद जब अपना कोई प्रिय अचानक जीवन-पथ पर मिल जाता है तो शाप-ताप से झुलसी इस ज़िन्दगी को भी कुछ और जीने की चाह होती है। 'जिजीविषु' कविता में इसी भाव की व्यंजना हुई है। प्रेम और उसकी स्मृति में कुछ संजीवनी शक्ति है। जब किन्हीं कोमल उँगलियों के स्पर्श से दिल के

साज़ बज उठते हैं तो उसमें से ज़िन्दगी का गीत फूटता है। 'राग-संवेदन / 2' इसी भाव-बोध की कविता है। 'वरदान', 'स्मृति' और 'बहाना' किसी प्यार की स्मृतियों के चित्र हैं जहाँ कवि को अपने प्रिय का प्राणप्रद उपहार, उसके सांत्वना के मधुर बोल, उसका रूठना याद आता है। एक अन्य कविता में कवि अपने 'दूरवर्ती' प्रिय से कहता है कि शेष जीवन को सुखी बनाने के लिए उसकी याद ही काफ़ी है:

.

शेष जीवन जी सकूँ सुख से
तुम्हारी याद काफ़ी है!
कभी कम हो नहीं
अहसास जीवन में तुम्हारा
यह बिछोह-विषाद काफ़ी है!

.

रागात्मकता के साथ-साथ कवि का निस्संगता-बोध भी लगा चलता है। इसीलिए 'बोध' कविता में वह स्मृति के स्थान पर विस्मृति का आह्वान करता है:

.

भूल जाओ — / मिले थे हम कभी!
भूल जाओ / हर व्यतीत अतीत को
गाये-सुनाये गीत को: संगीत को!

.

इस प्रकार ये कविताएँ निस्संगता से संयमित राग-संवेदनों का सम्बल लेकर जीवन-पथ पर समष्टि-व्यष्टि की विविध अनुकूल-प्रतिकूल, कटु-मधुर, सुखद-दुःखद स्थितियों के बीच में से रास्ता निकाल कर चलते रहने वाले कवि की सृष्टि है। साथ ही इस बात का भी प्रमाण है कि सच्चा कवि किसी वाद से बँध कर नहीं रह सकता। वह अपने अनुभवों में से अपना पंथ स्वयं निर्मित करता है और कभी-कभी स्वयं अपना ही अतिक्रमण करता हुआ आगे बढ़ता है।

. • • •

समीक्षित कृति : 'राग-संवेदन' [कविता]
रचनाकार : डा. महेंद्रभटनागर,110 बलवंतनगर, गांधी रोड, ग्वालियर — 474 002 (म.प्र.), फ़ोन : 0751-4092908
मूल्य : 175/- / पृष्ठ : 154 / प्रकाशक : इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, 156- डी, कमलानगर, दिल्ली — 110007
समीक्षक : डा. ऋषिकुमार चतुर्वेदी, 95 तिलकनगर, रामपुर — 244 901 (उ.प्र.)